विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ

1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010

फोन : 0734-2521499, 0755-2660407

Email : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

Web : www.mvspujjain.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-2

विक्रमादित्यकालीन चिकित्सा प्रणाली
डॉ. मंजू यादव

पृष्ठ क्र. 3-4

पुराणों में वर्णित युग प्रवर्तक विक्रमादित्य
डॉ. नितेश कुमार, ढालसिंह देवांगन, भाग्यश्री दीवान

पृष्ठ क्र. 5-6

वैदिककालीन अनुष्ठानिक चित्रकला
मनीष रत्नपारखी

पृष्ठ क्र. 7

बाणभट्ट और हर्षचरित
ईशान अवस्थी

पृष्ठ क्र. 8

एक पुरातत्वविद् की आत्मकथा
मिथिलेश यादव

विक्रमादित्यकालीन चिकित्सा प्रणाली

डॉ. मंजू यादव

भारत वर्ष में आयुर्वेद को श्रद्धा एवं आदर (सम्मान) की दृष्टि से देखा जाता था प्राचीनकाल भारत में आयुर्वेद के बहुत ही उच्च कोटी के विद्वान थे जिनके अथक परिश्रम और शोध कार्य अन्य देशों की चिकित्सा प्रणाली की तुलना में सर्वश्रेष्ठ के साथ–साथ यहाँ आयुर्वेद के शिक्षा केंद्र (गुरुकुल) भी बन गये थे जिनकी चिकित्सा विधि के चमत्कार देश–विदेशी पर फैले हुये थे। स्त्री चमत्कार एवं ख्याति के कारण आयुर्वेद का अध्ययन करने के लिए भारत वर्ष में आते थे और वैधक ज्ञान प्राप्त कर, उसका उपयोग कर रोगी को निरोगी बनाते थे। भारत में इस विद्या का पतन पाश्चात्य लोगों के आने के बाद ही हुआ है। पश्चिमी लोगों ने अपनी चिकित्सा प्रणाली को श्रेष्ठ बताने के लिए आयुर्वेद की विधि को अवैज्ञानिक बताकर जनमानस में घृणा का बीज उत्पन्न कर दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि हमारे ही भारतीय बिना सोचे समझे आयुर्वेद का उपहास करने लगे। जबकि भारत वर्ष में आयुर्वेद के एक से बढ़कर एक धुरंधर विद्वान उपस्थित थे जिनके अथक परिश्रम और तत्वन्वेषण से आयुर्वेद को देखकर और सुनकर अन्य देशों के लोग दाँतों तले अँगुली दबाते थे और जिनके पास आयुर्वेद अध्ययन हेतु देश–विदेश से आयुर्वेद का ज्ञान अर्जित किया करते थे। आयुर्वेद का पूर्ण इतिहास बहुत कठिन है। इसका संक्षिप्त वर्णन के लिए इसे चार भागों में बाँटा गया है। आयुर्वेद की उत्पत्ति अत्यन्त प्राचीन है। इसकी प्राचीनता के प्रति विद्वानों के विभिन्न मत है। सुश्रुत और कश्यप संहिताकारों के अनुसार आयुर्वेद की उत्पत्ति मनुष्य की उत्पत्ति से पूर्व की है। यह एक पौराणिक कल्पना समझेंगे। मानव जाति उत्पन्न होने से पहले चन्द्र, सूर्य तथा जल, वायु, खनिज, द्रव्य, विविध वनस्पति और प्राणी उत्पन्न हो जाते है। इन सबको स्वस्थ बनाये रखने और बिगड़े हुए स्वास्थ्य को पुर्नस्थापित करने के लिए ही आयुर्वेद की उपयोगिता रही। इस प्रकार से स्वास्थ्य रक्षा और व्याधि पिरोक्ष के सम्बन्ध में अनुभव प्राप्त करते गये। परन्तु ये सब अनुभव लोगों के आयुर्वेद की शैशवास्था कह सकते है। वैदिक काल में धीरे–धीरे मनुष्यों के विचार एवं ज्ञान में वृद्धि होने लगी जिससे नयी विवेक शक्ति के साथ वैद्यकीय विचार उत्पन्न हुए और इन विचारों को लेखन बद्ध या अक्षर बद्ध किया गया। सम्पूर्ण वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों का वैद्यकीय अवलोकन करने पर उनमें आयुर्वेद सम्बन्धी असंख्य विवरण एवं उपाय दिखाई देते हैं। इसलिए आयुर्वेद संहिताकारों ने अथर्ववेद को अपना गुरू मान लिया है। आयुर्वेद मूल अथर्ववेद को बताया गया। वेदों में मिलने वाले सब वैद्यकीय उल्लेख शरीर, निघटु, काय चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, विष चिकित्सा, जल चिकित्सा, सूर्य चिकित्सा, प्रसूति और कौमार इत्यादि आयुर्वेद के विविध अंगों के अनुसार संग्रहीत किये जाए तो एक सुन्दर बेदांग आयुर्वेद का एक ग्रन्थ बन सकता है। उपरोक्त विवरणों में जरा जीर्ण व्यवन को नवयौवन प्राप्ति युद्ध में पैर कट जाने पर लोहे के पैर लगाने का उपयोग करना, कटे–फटे शरीर पर इकट्ठा करके सभी को जोड़कर प्राण का संचार करना, कटे हुए सिर को जोड़ना, अंधे इंसान को नेद करना अर्थात् नई आँख लगाना आदि अनेकों चमत्कारिक प्रयोगों का उल्लेख आयुर्वेद में मिलता है। परन्तु इन साधारण तथा विशेष कर्मों को करने की पद्धति उनकी प्रक्रिया या उत्पत्ति का विवरण कहीं भी दिखाई नहीं देता है। सम्पूर्ण वेदांग आयुर्वेद बिखरा हुआ, असंगतिक और मंत्र–तंत्र घटित (उलेजपबंज) स्वरूप में मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि वेदकाल में वैधक अर्थात् आयुर्वेद ज्ञान बहुत बढ़ गया था, फिर भी एक स्वतंत्र शास्त्र बनाने के लिए जिस प्रकार की सुसंगतिक और सोपपर्तिक उन्नति किसी शास्त्र की होनी चाहिए उतनी उसकी उन्नति उस समय में नहीं हुई थी इसको आयुर्वेद की विवधर्ममानावस्था कह सकते है। इस काल भारत वर्ष में आयुर्वेद के बहुत विद्वान उभर कर

आये। जिन्होंने अपने अधिक परिश्रम और तत्वान्यषण से वेदांग आयुर्वेद में उसे स्वतंत्र शास्त्र बनाने के लिए अत्यंत आवश्यक और महत्व के अनेक परिवर्तन किये। इनके कुछ उदाहरण दिग्दर्शन के लिए यहाँ पर दिये जाते है। वेदों में शरीर का कुछ ज्ञान मिल जाता है, परन्तु वह अपूर्ण था और वह पशु चिकित्सा का ज्ञान था। आयुर्वेद मनुष्यों का वैद्यक होने के कारण मनुष्य शरीर का ज्ञान वैधों के लिए आवश्यक होता है। महर्षियों ने इस लिए मृत मनुष्य के शरीरों पर परिक्षण किया तथा शरीर के विविध अंगों पर चोट लगने पर उनके होने वाले परिणाम का अध्ययन किया अर्थात् जानकारी प्राप्त हुई और उससे होने वाले परिणामों एवं परिणाम के दुष्प्रभाव को भी जाना। वेदों में वनस्पति उपचार की हजारों विधियों का उल्लेख मिलता है। इन वनस्पतियों का उपयोग विभिन्न प्रकार की रोग निवारण औषधियों के रूप में होने लगा। इनकी वनस्पतियों अर्थात औषधियों की पहचान के लिए वनस्पति शास्त्रज्ञ के द्वारा उनके गुण धर्म को पहचाना गया। अतः अल विद्वानों की सहायता से अनेकों प्रकार की औषधियों का निर्माण हुआ। जो आगे कालान्तर में आम जन–जीवन में बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। इन्हीं आयुर्वेद ज्ञाता के द्वारा ही गम्भीर बीमारियों को बहुत सहज विधि से उनका निवारण करने में सहायक सिद्ध हुए। विक्रमादित्यकालीन समय में राजा विक्रमादित्य के नवरत्न में से पन्चतरी वैध भी थे उस समय उनका ज्ञान चरम सीमा पर था उनकी विद्या आज वर्तमान में भी आयुर्वेद के रूप में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

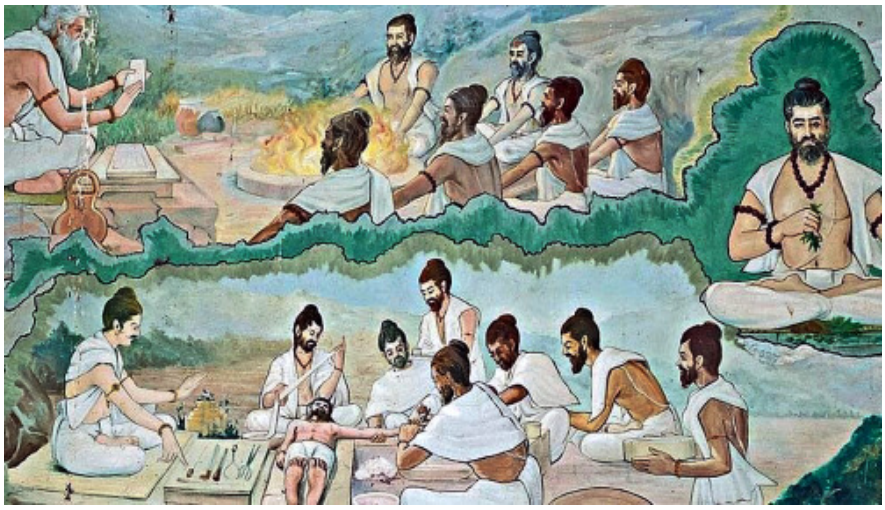

आयुर्वेद के ज्ञाताओं ने बहुत शस्त्रकर्म से लेकर नासासंधान जैसे अनोखे शस्त्रकर्म तक सब शस्त्र कर्म की पद्धति वर्णन की, शस्त्रकर्मों के लिए आवश्यक अनेक उपयोगी यत्र शस्त्र निर्माण किये। शस्त्र कर्म के समय संज्ञाहरण के लिए क्लोरोफॉम के समान मद्य का उपयोग शुरू किया, शस्त्र कर्म के पश्चात उत्पन्न होने वाले दोष का निराकरण करने के लिए व्रण बन्धन की वस्तुओं को सूर्य की किरणों से, जीवाणु नाशक वनस्पतियों धूप से, अग्नि से या उबलते पानी से विशोधित करके काम में लाने की प्रथा शुरू की जिसे आधुनिक जीवाणु नाशक व्रण–चिकित्सा पद्धति की जननी समझ सकते है।

वेदों में दोषों का केवल उल्लेख मिलता है, परन्तु स्वरूप एवं गुण का विवरण नहीं मिलता है। इन त्रिदोषों पर आयुर्वेद वैधों ने उनके ऊपर गम्भीर विचार करके उनके प्राकृत तथा विकृत कार्य निश्चित किये, उनके आधार पर सम्पूर्ण औषधि द्रव्यों के गुण धर्म निश्चित किये, विविध प्रकार के रोगों को पूर्ण रूप से स्वस्थ किया, इस उपचार को लेखन बद्ध किया उनका वर्गीकरण किया और एक सरल सुन्दर और उपर्युक्त चिकित्सा प्रणाली स्थापित की वेदों में ज्वर, क्षय, कुष्ठ इत्यादि संक्रामक रोगों का उल्लेख बहुत अधिक मिलता है। आयुर्वेद ज्ञान के द्वारा ही इन रोगों के प्रसार को रोकना, इससे सम्बन्धित साधन, स्थानों का परित्याग करना, सम्बन्ध विच्छेद अर्थात् रोगों के दौरान अपने परिवार से दूरी बनाने के लिए रोगी को समझाना इन बिमारियों के निवारण के लिए रसायन का प्रयोग इत्यादि अनेक प्रकार के तरीकों द्वारा इनकी रोक–थाम करने में काफी सफलता प्राप्त की। वेदों में प्रसव काल की अवधि दस महिने तक बताई गई है। परन्तु पूर्ण सिद्ध नहीं होती है, इन उपाधि में कई अन्तर दिखाई देते है। 8 महिने, 9 महिने, 8 और 10 महिने का प्रसवकाल बहुत कम दिखाई दिया। किन्तु 9 महिने अधिकांशः प्रसव काल दिखाई दिया। उन्होंने प्रसव काल के दौरान अधिक से अधिक और कम से कम समय सीमा कि अवधि का ज्ञान भी दिया जो आज वर्तमान में भी सहायक सिद्ध होता है।

उस काल की जाँच और वर्तमान जाँच के साथ बहुत अधिक मात्रा में ठीक मिलती है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक पहलुओं से आयुर्वेद चिकित्सा के द्वारा अनेक परिवर्तन और सुधार दिखाई दिया। इन परिवर्तनों के कारण आयुर्वेद एक सुसंगठित, स्वर्णसुन्दर और स्वतंत्र शास्त्र वन गया तथा उसकी योग्यता वेदों के बराबर और उपयोगिता वेदों में भी अधिक हो गई। इस काल के आयुर्वेद का महत्व इतना बढ़ गया था कि एक व्यक्ति के लिए सम्पूर्ण आयुर्वेद का आकलन करके उसके सभी अगों का व्यवसाय करना असम्भव सा हो गया था। इसलिए आयुर्वेद में शल्य चिकित्सा को आठ भागों में विभक्त किया गया था इन अंगों के ग्रन्थ भी स्वतंत्र बनाये गये थे और वर्तमान समय के समान उन अंगों के विशेषज्ञ अपना–अपना व्यवसाय के रूप में कर सकते थे अपने–अपने विषय क्षेत्र में होने पर वह राजा के दरबार में और अन्य स्थानों पर कार्य क्षमता के साथ और लोगों के विक्रमादित्य काल में आयुर्वेद का ज्ञान एवं की इतनी बढ़ गई थी भारत के बाहरी क्षेत्रों से भी इस पद्धति से उपचार के लिए आने लगे।

पुराणों में वर्णित युग प्रवर्तक विक्रमादित्य

डॉ. नितेश कुमार मिश्र, ढालसिंह देवांगन, भाग्यश्री दीवान

समूचे विश्व में भारत एवं भारतीय जन के प्रतिष्ठा के फैलने का मुख्य कारण इनके समुद्र सांस्कृतिक इतिहास का सुरक्षित रहना एवं पुरातात्विक साक्ष्यों का वृहत मात्रा में प्राप्त होने से है। प्राचीन भारत के गौरवशाली इतिहास का वर्णन वेद, पुराण, बाह्मण ग्रंथों, उपनिषद्, जैन एवं बौद्ध ग्रंथों, जातक कथाओं, जनश्रुति, गीतों तथा कहानियों के साथ ही बाहर से आये यात्रियों के यात्रा विवरणों में भी मिलता है। यह भू–भाग सोने की चिड़िया के नाम से जाना जाता था इसका अर्थ हम इस प्रकार ले सकते हैं कि यह भूमि प्राचीनकाल से सांस्कृतिक, समाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से एक समृद्ध प्रदेश था तथा बाहरी लोगों के आक्रमण एवं आकर्षित होने का सबसे महत्वपूर्ण कारण यही था कि यहाँ की संस्कृति एवं सभ्यता अन्य देशों की अपेक्षा अधिक विकसित एवं इनका स्वरूप अधिक विशाल था। प्राचीनकाल से इस भूमि में अनेक वीर सपूतों ने जन्म लिया और अपने साम्राज्य का विस्तार पूरे भारतवर्ष में फैलाने के साथ ही देश के अन्य भागों में भी फैलाया। इस भूमि में नन्द मौर्य शुर गुप्त, वर्धन, कलचुरि, राजपूत वंश के अनेक शासकों के साथ ही अन्य शासकों ने सफलतापूर्ण शासन किया। इन्हीं शासकों में उज्जयिनी के महान् शासक विक्रमादित्य का नाम भारतीय इतिहास के पन्नों में दबा हुआ है जिसे एकत्रित करने की आवश्यकता है। पुराणों, साहित्यिक साक्ष्यों के साथ दी कथा एवं कहानियों के माध्यम से इनके विषय में हमें विस्तृत जानकारी मिलती हैं किन्तु पुरातात्विक साक्ष्यों का हमेशा अभाव रहता है। इस प्रांत के विषय में सबसे महत्वपूर्ण जानकारी शकों के भारत पर प्रथम आक्रमण के समय से होता है। शकों ने अवन्ती पर आक्रमण किया एवं यहाँ के राजा गर्दभिल्ल को पराजित कर इसपर अपना अधिकार कर लिया। इस घटना के 14 वर्ष बीत जाने के बाद विक्रमादित्य ने राजस्थान, अवन्ती और सुराष्ट्र के गणों की सहायता से अपनी शक्ति को संगठिन कर एक बहुत बड़े गंण संघ की स्थापना की और शकों को मालवा में पराजित कर उनको खदेड़ दिया। इस उपलक्ष्य में इन्होंने एक संवत् का प्रसार किया जिसे कृत, मालव और अंततः विक्रम संवत् के नाम से पूरे भारत में आज भी जाने जाता है। विक्रमादित्य भारत के मध्य प्रांत मालवगण के एक कुशल एवं महत्वपूर्ण शासकों में से एक थे किन्तु इनका इतिहास कुछ धुमिल सा प्रतीत होता है प्रायः इनसे संबंधित पुरातात्विक साक्ष्यों का आभाव देखने को मिलता है। प्राचीन भारत के बहुत से इतिहासकार विक्रमादित्य के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते है उनके अनुसार विक्रमादित्य के विषय में कोई ठोस एवं प्रामाणिक जानकारी प्राप्त नहीं होती है एवं किसी भी साहित्य में वर्णित साक्ष्यों को तब तक आधार नहीं माना जा सकता जब तक कोई पुरातात्विक प्रमाण नहीं मिलते हैं। भारतीय जनमानस पुरातन काल से अपने धर्म, संस्कृति एवं इतिहास से संबंधित विषय को लेकर सदैव चिन्तित एवं जागृत रहा है। प्राचीन भारतीय इतिहास जानने में साहित्यिक साक्ष्यों में पुराणों का विशेष महत्व रहा है। पुराण का शाब्दिक अर्थ, प्राचीन या पुराना होता है। पुरा शब्द का अर्थ अतीत और अण शब्द का अर्थ कहना होता है। वैदिक वांग्यमयों में पुराण का अर्थ प्राचीन वृत्तांत दिया गया है। पुराणों की रचना मुख्यतः संस्कृत भाषा में हुई है, किन्तु पुराणों का क्षेत्रिय भाषाओं में भी आख्यान प्राप्त होते हैं। अनेक ग्रंथों में पुराण की व्याख्या इतिहास शब्द के साथ ही कि गई है।

इसके विस्तार पूर्वक वर्णन करने से पुराण में निहित इतिहास का ज्ञान हमें प्राप्त होता है। अलग–अलग प्राचीन ग्रंथों में पुराण की जो व्याख्या की गई है इस प्रकार है–

तमितिहासच्य पुराणं च गाथाच्य नाराशंसीच्यानुब्यचलन
सर्गच्य प्रतिसर्गचा वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितम् चौव पुराणं पच्चलक्षणम्।।

सर्ग प्रतिसर्य, वंश, समय एवं वंशानुचरित ये पाँच लक्षण पुराणों

में बताए गये है।

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृहयेत्।

ऋग्वेद भगवोऽध्येमि यजुर्वेद सामवेदमाधर्वण चतुर्थमितिहासपुराणपत्रमं

इतिहासपुराणं पच्चमं वेदाना वेदः

न्यायदर्शन वात्स्यायन भाष्य में कहा गया है कि इतिहास पुराणों का मुख्य विषय है। वेदों में पाँचवां वेद इतिहास पुराण है।

इतिहास–पुराणं च पच्छामों वेद उच्यते जयो नार्मेतिहासोऽयम पुराणपूर्णचन्द्रेण श्रुतिज्योस्त्राः प्रकाशितः

इसके अनुसार महाभारत जहाँ इतिहास का वर्णन करता है उसी प्रकार पुराण भी इन लक्षणों से युक्त इतिहास है। महर्षि पाणिनि ने लिखा है पुराभवमिती पुराणं प्राचीनकाल में जो घटित हुआ वह पुराण है। सायणाचार्य के अनुसार–

पुराणं पुरातन वृत्तान्त कथन रूपमाख्यानम्।

अर्थात् पुराण प्राचीन वृत्तान्तों का कथा के रूप में विवरण है। पुराणों का एक भाग वंशानुचरित है जो राजाओं एवं माहान ऋषियों की वंशावलियो उत्पत्ति एवं कार्यों की जानकारी प्रदान करता है। पुराणों में भारतीय राजावंशों के महान् राजाओं एवं वंश परंपरा का वर्णन मिलता है। इसी क्रम में हमें भविष्य पुराण एवं स्कंद पुराण में सम्राट विक्रमादित्य के विषय में थोड़ी जानकारी प्राप्त होती है। वायु पुराण एवं ब्रह्माण्ड पुराण में आंध्रों के समकालीन छः वंशों में सप्तदश (गर्दभिल्ल) का वर्णन प्राप्त होता है। इसी गर्दभिल्ल के विषय में जैन साहित्य प्रभावक चरित से ज्ञात होता है कि विक्रमादित्य गर्दभिल्ल के वंशज थे। इसी विकमादित्य के विषय में भविष्य पुराण में विवरण मिलता है कि उस समय विश्रुत नाम का एक ब्राह्मण रहता था उसे तपस्या के द्वारा एक फल प्राप्त हुआ जिसे खाकर कोई भी अमर हो सकता था इस फल को विश्रुत ने भृर्तहरि को बेच दिया जिसे भृर्तहरि योगासिन होकर वन में चने गए तब विक्रमादित्य ने अपने राज्य पर स्वतंत्र रूप से शासन किया। इसी प्रकार भविष्य पुराण के पृष्ठ संख्या 244–245 में यह कहा गया है कि कलियुग के तीन हजार सात सा दस वर्ष व्यतीत होने पर प्रमर नामक राजा ने राज्य करना प्रारंभ किया, उनका महमद नामक पुत्र हुआ जिसने वर्षों तक शासन किया उसे देवदूत नामक पुत्र हुआ उसका पुत्र गंधर्वसेन हुआ जिसने पचास वर्षों तक शासन किया उसके उपरान्त अपने पुत्र शख का अभिषेक कर वह वन में प्राप्त हुआ। उसके उपरान्त तीन हजार वर्ष पुर्ण होने पर कलयुग में शकों के विनाश और आर्य धर्म की ओर चला गया। शक ने वीरमती नामक देव कन्या से विवाह किया जिससे उसे गंधर्वसेन नामक पुत्र अभिवृत्ती के लिए भगवान शंकर के एक गण ने विक्रमादित्य के रूप में स्वयं अवतार लिया। बुद्धि विशारद विक्रमादित्य पाँच वर्ष की ही बाल्यावस्था में तप करने वन में चले गए बारह वर्षों तक तपस्या से वे ऐश्वर्य संपन्न हो गए उन्होंने अम्बावती नामक दिव्य नगरी में भगवान शिव द्वारा अभिरक्षित क्लीस मूर्तियों से समन्वित सिंहासन पर विराजमान हुए माता पार्वती के द्वारा प्रेषित वेताल उनकी रक्षा में सदा तत्पर रहे। विक्रमादित्य ने मणियों से विभूषित धातुओं की अनेक स्तंभों वाले धर्म सभा का निर्माण करवाया था जहाँ पर अनेक ब्राह्मणों को बुलाकर विधिवत पूजा के द्वारा सिंहासन की स्थापना करवाई। इसी धर्म सभा में ब्राह्मणों से अनेक धर्म–गाथाएँ सुनी। इसी धर्म सभा में वेताल नामक ब्राह्मण ने इतिहास से परिपूर्ण रोचक आख्यान विकमादित्य को सुनाया। भविष्य पुराण के आगे के पृष्ठों पर विक्रमादित्य और वेताल के मध्य हुए आख्यानों का कथानक के रूप में विवरण दिया है। आख्यानों की समाप्ति के बाद वेताल के वापस चले जाने के पश्चात् विक्रमादित्य ने वर्षों तक शासन किया। अश्वमेध यज्ञ किया एवं वह चक्रवर्ती राजा हुआ।

विक्रमादित्य का अन्य विवरण हमें स्कंद पुराण के कुमारीका खण्ड में प्राप्त होता है जिसमें कहा गया है कि कलयुग के तीन हजार बीस वर्ष बीत जाने पर इस पृथ्वी पर राजा विक्रमादित्य होंगे। इसी राजा विक्रमादित्य ने विक्रम संवत् का प्रर्वतन किया था जो भारत का मुख्य संवत् है।

इस प्रकार पुराणों से हमें सम्राट विक्रमादित्य के विषय में जो जानकारी प्राप्त होती है उससे यह ज्ञात होता है कि ईसा से पूर्व एक ऐतिहासिक पुरूष अवन्ती के क्षेत्र में शासन करे रहे थे। जो शवमतानुयायी था तथा पार्वती के नौरूपों की अराधना करता था। जिसने धर्म सभा के लिए भवन का निर्माण करवा कर धर्म से संबंधित आयोजन भी करवाया था वह इतना योग्य था कि उसने अश्वमेघ यज्ञ का आयोजन किया तथा अनेक भू–भागों को जीतकर चक्रवर्ती सम्राट हुआ। भविष्य पुराण के अनुसार वेताल एक ब्राह्मण था जो माता पार्वती का उपासक था और जब विक्रमादित्य ने धर्म सभा का आयोजन किया तो उस धर्मसभा में वेताल ने विक्रमादित्य को ऐतिहासिक कथानकों के माध्यम से न्याय और धर्म की शिक्षा प्रदान की थी। जो आगे चलकर लोकमानस में वेताल पच्चीसी नामक कहानी के रूप में प्रसिद्ध हुआ। वेताल पच्चीसी एक बहुत प्रसिद्ध कथा है। पौराणिक साक्ष्यों के साथ ही विक्रमादित्य एवं मालव प्रांत से संबंधित कुछ पुरातात्विक साक्ष्यों जिनमें मुख्य रूप से सिक्के है जो प्रामाणित करते है कि विक्रमादित्य मालव प्रान्त के एक शक्तिशाली शासक थे। उज्जैन से कृत नामांकित मिट्टी की दो मुद्रा प्राप्त हुई है जिनमें एक पर कुतस (कुत्तस्य) एवं दूसरे पर रात्रो सिरि व कतस उजेनिय लेख प्रथम शती की ब्राम्ही में लिखा है। एक सिक्के पर ई.पू. प्रथम शती की विक्रम और परवतेन्द्र कदस लेख अंकित है। अतः इन सिक्कों से प्रामाणित होता है कि कृत, विक्रम एवं पर्वतेनद्र अभिन्न है। पुरातत्ववेत्ता कारलाईल ने जयपुर के समीप उनियर से कुछ छोटे आकार के सिक्के प्राप्त किये थे। उन मुद्राओं में मालवाना जय, मालवगणस्य जयः एवं जय मालवाना लेख अंकित है। इन लेखों से स्पष्ट होता है कि मालव या मालवगण की विजय हुई थी। जॉन एलन ने इन सिक्कों की अंतिम तिथि 100 ई.पू. बतलाई है। अतः इन सभी साक्ष्यों के आधार पर इनकी ऐतिहासिकता प्रामाणित होती है।

वैदिककालीन अनुष्ठानिक चित्रकला

मनीष रत्नपारखी

वैदिककालीन शिव का जो सबसे महत्वपूर्ण साक्ष्य प्राप्त होता है, वह है वेद का 11455 मंत्र। जिसमें मंत्र के ऋषि द्वारा अग्निदेव के चित्र को चमड़े के फलक पर बनाये जाने का उल्लेख है। मंत्र है–

स ई मृगो अप्यो वनर्गुरुप त्वच्युपमस्यां निधायि।
व्यब्रवीद् वयुना मर्त्येभ्योऽग्निर्विवॉ ऋतचिद्ध सत्यः।

मंत्र का अर्थ है– अग्निदेव, जो अपाम नपात (अप्यरू जल से उत्पन्न) है, वन में विचरने वाले हिंस्र पशु की भाँति क्रुद्ध (मृगःवनर्गुः स ई) है, उसकी अनुकृति या चित्र बनाकर, उसे निश्चल और शांत रूप में, चमड़े (के टुकड़े–उप–त्वचि) पर रखता हूँ या स्थापित (निधायि) करता हूँ। यह मंत्र अग्निदेव को समर्पित, अर्थात् उनके लिए कहा गया है इसलिए इस मंत्र का देवता अग्निदेव है और मंत्र का ऋचाकार ऋषि दीर्घतमा औचिथ्यः है।

इस मंत्र की पहली पंक्ति के अंतिम तीन शब्द (1) उप–त्वचि, (2) उपमस्याम्, और (3) निधायि

विवादास्पद होने के कारण विशेष रूप से विवेच्य हैं। निधायि का स्पष्टतः अर्थ रखना, स्थापित करना या प्रतिष्ठित करना है। मंत्र के ऋषि का कथन है कि मैं तुम्हें रखता हूँ। इससे प्रश्न यह उठता है कि वह उसे कहाँ रखता है? इसका उत्तर है– उप–त्वचि, अर्थात् चमड़े (के टुकड़े) पर रखता हूँ। अगला प्रश्न है कि किसलिए रखता हूँ? इसका उत्तर है– 'उप–मस्याम्, अर्थात् मैं तेरी गतिशीलता, तेरी क्रुद्ध भाव–भरी चेष्टाओं, तेरी हिलती–डुलती, लपलपाती जिह्वाओं (अग्नि की लपटों) को, जो मुझे भयभीत कर रही हैं, उन्हें दूर कर (अर्थात् तेरे रौद्र रूप की अपेक्षा) तेरे शांत, प्रसन्नताकारक रूप में, तेरी उपासना करने के लिए, तेरे शांत रूप को चमड़े के टुकड़े (चित्र फलक) पर चित्रित कर रहा हूँ। प्रोफेसर एस.वी. वेंकटेश्वर ने इस मंत्र पर गंभीरतापूर्वक सविस्तार विचार किया है। उनका मत है कि मृग और अप्यः अनिवार्यतः चित्र के संदर्भ में नहीं आते, लेकिन यहाँ मृग का प्रयोग उस अग्नि के लिए हुआ है जिसके लिए यह सूक्त कहा गया है। यह अग्नि हिंस्र पशु की भाँति प्रचंड रूप से क्रुद्ध है? अप्य भी स्पष्टतः जल से उत्पन्न अग्नि (अपाम नपातः) के संदर्भ में यहाँ प्रयुक्त हुआ है। देवताओं की उत्पत्ति जल से मानकर उन्हें इसी अर्थ में अप्यः कहा गया है। अग्नि का जन्म जल से हुआ है यह वैदिक ऋषियों की बहुचर्चित धारणा है। वैदिक कर्मकांडों में जल से अग्निचयन के उल्लेख पाये जाते हैं। अप्सु हायाम चीयते, में हुआ प्रतीत होता है। जिसका अर्थ है अग्नि जल से प्रज्ज्वलित होती है। अप्या का प्रयोग संभवतः अंतरिक्ष से संबद्ध दिव्य अग्नि के भावार्थ इस मंत्र में प्रयुक्त त्वचि शब्द का अर्थ ऐसे चमड़े से है जिसमें उपमा संलग्न है। संभवतः यह उन चमड़ों में से किसी ऐसे चमड़े का संदर्भ है जिनका उपयोग वैदिक कर्मकांडों में होता था। उपमा–त्वक्, त्वक् जिसका मूल अर्थ चर्म या चमड़ा है, का ही विशेषण हो सकता है। प्रो. वेंकटेश्वर का कहना है कि आर्यों की उपासनार्थ मूर्तियाँ गोलाकार होती थीं अतः उन्होंने इस संभावना पर भी विचार किया है कि त्वक् शब्द चमड़े के बजाय आकार के लिए तो प्रयुक्त नहीं हुआ? इस विषय में उनका कहना है कि वैदिक उल्लेखों में अनेक स्थलों पर त्वक् शब्द आकार के गौण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। त्वक् के निम्नलिखित कुछ ऐसे उदाहरण है जिनमें आये त्वक् शब्द का अर्थ यदि चमड़ा लिया जाय तो कोई अर्थ ही नहीं बनता। अतः यहाँ त्वक् का अर्थ आकार ही उचित बैठता है।

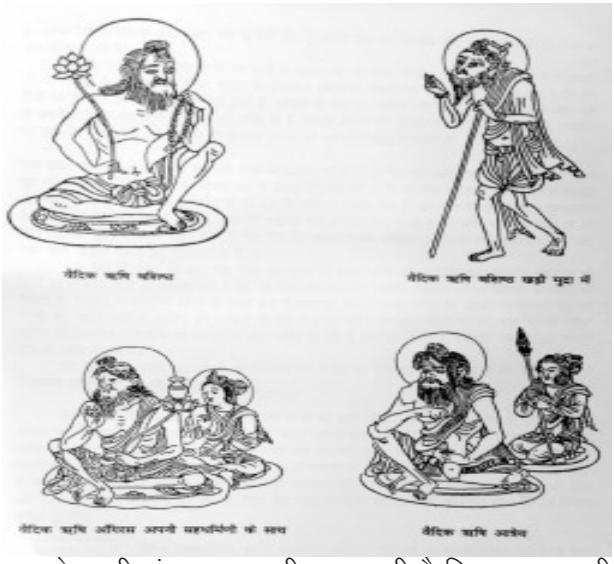

त्वच से दूसरी संभावना यह की जा सकती है कि त्वक्ष शब्द की उत्पत्ति त्वष्टा से संबंधित रही हो। त्वष्टा है, आकारों का रचनेवाला है। त्वक्ष के क्ष और त्वष्ट के ट का वर्णविपर्यय हुआ है अतः त्यक्ष और त्वष्टा का पारस्परिक संबंध है, क्योंकि तक्ष लकड़ी है और तक्षा बढ़ई। यह मंत्र जिस ढंग से कहा गया है वह स्पष्टतः चर्म पर बने अग्निदेव के चित्र का स्तुतिपरक मंत्र है। गतिशील, रुद्र चेष्टाओं से युक्त अग्नि की शांत मुद्रा को चमड़े पर चित्रित करने के कथन का यह काव्यात्मक अभिव्यंजनापरक ढंग है, जिसे गद्य की सीधी भाषा में इस प्रकार कहा जायेगा कि मैं अग्निदेव का अविचल व्यक्ति चित्र चमड़े के टुकड़े (चित्र फलक) पर बना रहा हूँ। अग्नि का यह चित्र चमड़े पर संभवतः रंगों से बना हो, क्योंकि वैदिक काल के देवों के रूप–विधान में रंगों का उपयोग पाया जाता है। दूसरे, परवर्ती काल में रंगों से चित्रित चित्रों का प्रचलन पाया गया है। रंगों से निर्मित ऐसे चित्रों के उल्लेख पातंजलि के महाभाष्य, वाण के हर्षचरित और जैन ग्रंथों में मिलते हैं। वैदिक कालीन यह अग्निदेव का चित्र रंग– युक्त हो यह असंभव नहीं है, क्योंकि

यमपटिक की परंपरा अति प्रचीन रही है जो मूर्तिपरक, रंग से चित्रित चित्रों पर आधारित थी इस मंत्र को लेकर यद्यपि विद्वानों में मतैक्य नहीं है फिर भी ऋग्वैदिक काल में चित्रकला की उपस्थिति को नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि और भी अनेक साक्ष्य है। चित्र क्या है? बिंदु से विस्तार पाकर रेखाएँ चित्र की रचना करती है। चित्र किसी उपकरण, वस्तु या वास्तु का प्रारूप, खाका (ले–आउट) या रेखांकन भी हो सकता है, जो उसके निर्माण का मूलाधार (ब्लू प्रिंट) होता है। इस रेखांकन को रंग–संयोजन द्वारा चारुता प्रदान की जाती है। उसे सादृश्यता, समरूपता प्रदान कर आनंददायी बनाया जाता है। इस चित्र और चित्र की रचना से संबंधित शब्दावली में रेखा, रंग, माप, रूप, प्रतिरूप, अनुकृति, प्रतीक व सौंदर्य संबंधी शब्द वैदिक साहित्य में विपुल मात्रा में उपलब्ध है, जो चित्र की उपस्थिति की सूचना देते हैं। चित्र के लिए जो शब्द वैदिक शिल्प पदावली में उपलब्ध है वह है आलेख्य रेखा के लिए रेखा शब्द भी उपलब्ध है और लेखा भी शतपथ ब्राह्मण 7.2.2.18 का कथन है कि 'लेखासु होम प्राणा', अर्थात् रेखा में अपने प्राण छोड़ गयी। कहना चाहिए कि रेखा चित्र का प्राण तत्व है। जैमिनि गृहह्य सूत्र 1.1 के रेखामुल्लिख्य में रेखा के अर्थ में रेखा शब्द का उल्लेख है जो यज्ञ वेदि पर रेखाएँ बनाने (उल्लिख्य), अर्थात् यज्ञ वेदि की रचना और उसे सजाने (अल्पनाओं द्वारा) के निर्देश के रूप में प्राप्त है। आलेख्य शब्द संस्कृत में भी चित्र के लिए मिलता है। हलायुध कोश और विलियम मोनियर के अनुसार आलेख्य और चित्र पर्यायवाची है। रेखांकन के बारे में ब्राह्मण व सूत्र ग्रंथों में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध है। माप के अर्थ में प्रमा और मान शब्द उपलब्ध है। मा धातु का अर्थ मापने से है और मा से बने शब्द प्रमा, प्रतिमा, प्रतिमान आदि माप से संबंधित हैं, जो मापे जाते, माप कर बनाये जाते या नमूने व नक्शे, प्रारूप (ले–आउट) आदि की अभिव्यक्ति करते हैं। रंग चित्र में सादृश्यता लानेवाला एक मूल तत्व है। यही सादृश्यता चित्र का प्राण या रस तत्व है। चित्र में रंगानुकूलता ही संगति है, इसी से वैचित्र्य या वैविध्य आता है। यह वैविध्य एकरसता को दूर कर सौंदर्य की सृष्टि करता है। चित्र शब्द के गुणवाची तत्व स्पष्टता, भास्वर, उज्ज्वल, नाना प्रकार का, नाना वर्ण का अद्भुत और प्रिय आदि गुणों के संपादन में रंग का महत्वपूर्ण योग होता है। रंग के विषय में वैदिक साहित्य में विपुल जानकारी उपलब्ध है। रंग के उल्लेख वस्त्रों, रत्नों और मणियाँ, पशुओं आदि के अनेक संदर्भों से प्राप्त है और इनके मनोवैज्ञानिक प्रभाव के बारे में भी जानकारी प्राप्त है। सूर्यसिद्धांत के माध्यम से रंगों की विशद वैज्ञानिक जानकारी उपलब्ध है। सूर्य के प्रकाश में निहित सात रंगों का वर्णन क्रमशः पर्जन्य, कश्यप, महेंद्र, सूर्य, सत्य, भृश और नभस के नाम व गुणों के रूप से मिलता है। इसी प्रकार भू, भुव, स्व, मह, जन, तप सत्यम् सात लोक है, जिन्हें सूर्य धारण करता है। यही सूर्य के सात बाड़े हैं, जो इन्हीं सात रंगों का तात्पर्य रखते हैं। वैदिक वर्ण योजना में प्रकाश को अत्यंत महत्व प्राप्त है। प्रकाश का रंग पवित्रता और आंतरिक शुद्धता का प्रतीक है जो देवों का अपना निजी गुण है। प्रकाश के रंग को आय द्वारा दी गयी महत्ता से अनुमान होता है कि उन्होंने ऐसे ही हल्के, भास्वर और दैदीप्यमान रंगों का प्रयोग किया होगा। हिरण्य वर्ण तो इतने अधिक स्थलों पर आया है कि ज्ञात होता है कि आर्यों को उससे अद्भुत ही देखा है। हिरण्य वर्ण हल्के पीले दैदीप्यमान रंग का द्योतक है। उन्होंने दयौ पृथ्वी पर्यंत समस्त भव्य रूपों को हिरण्यमय दूसरा, उनका प्रिय वर्ण सूर्यत्वच था, जो सूर्य जैसी भास्वर गोरी त्वचा के रंग का सूचक है। अश्विनों ने कुष्ठग्रस्त अपाला ऋषिका का कुष्ठ दूर कर उसे सूर्यत्वच प्रदान की थी। शोणाः (रक्त वर्ण), बभः वर्ण (भूरा रंग), भी उनके प्रिय और उनके देवताओं के रंग रहे हैं। लोहित (लाल) आमा (काली या लोहित) रंग की गाय, घोड़े आदि के पाये जाने के उल्लेख है। अज्ज के रूप में एक ऐसे हल्के प्रकाश की परिकल्पना है, जो स्वयं तो प्रकाशित है ही, अपितु दूसरों को भी अपने प्रकाश से प्रकाशित, सुशोभित या आभूषित कर देता है। अथर्ववेद में वर्ण शब्द का तीन बार प्रयोग हुआ है, जिसमें से दो बार रंग के अर्थ और एक बार जाति सूचक अर्थ में है। इन पहले दो उल्लेखों से शुक्ल व हरित रंग का ज्ञान होता है, साथ ही और भी अन्य रंगों का ज्ञान अन्य उल्लेखों से प्राप्त होता है जैसे, लाल रंग आदि।

सूत्र ग्रंथों में रंग के पर्याप्त उल्लेख में करता है, जो ज्ञानिक दृष्टि से रंग कला का उद्भाव और विकास वैदिक काल में हुआ है। जैमिनी गृह सूत्र 1.1 का यह निर्देशः

स्थण्डिलं लक्षणं कुर्यान्मध्ये प्राचीं रेखामुल्लिख्योदीचीं
च संहितां पश्चातिस्रो मध्ये प्राच्योऽभ्युक्ष्याग्नि प्रतिष्ठपय।

अर्थात् भूमि का एक हाथ भर माप (लगभग 18 या 22 इंच) का वर्ग क्षेत्र मापा जाये। उसका परिसमूहन (झाड़कर साफ) किया जाये, उस पर पानी छिड़ककर घास के तने से उसके मध्य में एक निशान लगाया जाये। एक रेखा पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर खींची जाये, दूसरी रेखा दक्षिण से उत्तर की ओर पहली रेखा को उसकी पश्चिम भुजा को छूती हुई खींची जाये। इसके बाद तीन रेखाएँ मध्य में पश्चिम से की ओर खींची जाये। यह रेखांकन त्रिशूल के आकार के समान होगा जिसका बिंदु पश्चिम दिशा में होगा। यह चित्र के प्रारूप का एक स्पष्ट उल्लेख है और यह सरल, सादा या साधारण रचना नहीं, बल्कि एक दक्ष ज्यामितीय रेखांकन है। यह ज्यामितीय रचना यज्ञ वेदी में अग्नि को प्रतिष्ठित करने, अर्थात् अग्नि को प्रज्वलित करने से पहले यज्ञ वेदि के प्रत्येक पक्ष में इसी प्रकार से रचने का विधान है। इसी प्रकार की तथा अन्य ज्यामितीय रेखांकनों के निर्देश प्रायः सभी गृह्य सूत्रों में दिये गये हैं। ये इससे आगे दिये निर्देशों के अनुसार ये ज्यामितीय संरचनाएँ और जटिल होती जाती हैं, जिनमें विभिन्न आकार अपना रूप लेते हुए भी देखें जा सकते हैं। जैमिनि गृह्य सूत्र आगे निर्देश देता है कि अमुक दिशा में अमुक ग्रह उपलब्ध कराया जाये, ताकि वे यज्ञ में अपना रूप लेते हुए भी देखें जा सकतें है।

बाणभट्ट और हर्षचरित

ईशान अवस्थी

'हर्षचरित' के आरंभिक तीन उच्छवासों में बाण की आत्मकथा और उसके बाद पाँच कुछ उच्छवासों में हर्ष की जीवनी वर्णित है। बाण की आत्मकथा अपने आप में रोचक, प्रेरणादायक और औपन्यासिक लालित्य से ओत–प्रोत है। संस्कृत के एक महान् एवं अद्वितीय कथाकार की जीवनी होने के कारण उसका स्वतः महत्व है और उसका संबंध भारत के एक चक्रवर्ती सम्राट से जुड़ा होने के कारण उसकी उपयोगिता ऐतिहासिक दृष्टि से महती हो गई है। इस रूप से यह आत्मकथा तत्कालीन भारतीय संस्कृति का भी एक अविभाज्य अंग बन गई है, जिसके बिना भारत का सांस्कृतिक इतिहास अधूरा प्रतीत होता है। बाणभट्ट की यह आत्मकथा सुदूर पूर्व भारत के दो विलक्षण अद्भुत एवं दिग्गज साहित्य के महारथियों की स्मृति को उज्जीवित कर देती हैं। उन दोनों के नाम है– कालिदास और अरवयो। यद्यपि इन दोनों महाकवियों ने अपनी कोई सत्यकार ने प्रकाश डाला है, किन्तु उनकी रचनाओं के अन्तःसाध्य से यह व्यक्ति होता है कि उनकी साहित्य–साधना को उनके व्यक्तिगत जीवन की विडम्बनाओं ने अतिशय से प्रनादित किया और उन्होंने लोक–जीवन के विभिन्न अनुभव को बटोरकर उन्हें अपनी रचनाओं में इस प्रकार सँजोया कि वे सर्वथा एकाकार हो गये। किन्तु इन अत्यन्त निपुणता से सन्दमों से विद्वानों ने जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे बड़े महत्वपूर्ण एवं उपयोगी हैं। सौभाग्यवश हर्षचरित के रूप में बाण की आत्मकथा उपलब्ध है।

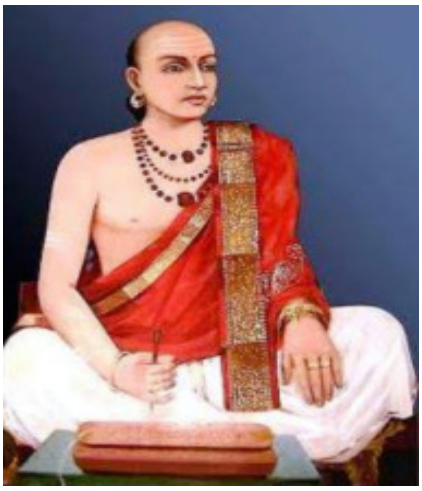

बाण का जन्म वात्स्यायनों के उच्च ब्राह्मणवंश में हुआ था। जब वह बालक था, उसकी माता का निधन हो गया था और चौदह वर्ष की आल्पायु में ही पिता दिवंगत हो गये। पिता की मृत्यु से शोकाकुल उसका मन जब कुछ अवचेतन हुआ तो उसने स्वयं की सर्वथा नयी स्थिति में पाया। उसकी अपरिपक्व बुद्धि ने उसके युवा मन को देश–देशान्तरी के नये–नये अनुभव प्राप्त करने के लिए उकसाया। उसकी स्वेच्छाचारिता, निरंकुशता और अनुशासन–हीनता ने कुछ ही दिनों में उसको आवारा बना दिया। उसने लिखा है–जैसे किसी के शिर पर ग्रहवाल सवार होती है, वैसे ही स्वच्छन्दता और नवयौवन के नशे में चूर होकर मैं घर से निकल पड़ा, क्योंकि मेरे मन को देश देशांतर का भ्रमण करने की मेरी उत्कंठा ने कसकर बाँध लिया था मेरे इस आवारापन की लोगों ने खूब हँसी उड़ाई। यद्यपि बाण की बहुत जग–हँसाई हुई और उसको तरह–तरह से बदनाम किया गया। किन्तु उसके इस आवारेपन ने ही उसको एक दिन महान् बना दिया। उसका प्रवासकाल अनेक परिस्थितियों में बीता। उसके जीवन के ये सस्मरण सुख, दुःख, विनोद, घृणा और आदर्श आदि अनेक अनुभवों से भरपूर हैं। उसने प्रसिद्ध राजकुलों, अनेक केन्द्रों, विभिन्न साहित्यकारों, कलाकारों और भाँति–भाँति के रसिकों के बीच रहकर जीवन बिताया। अपनी मित्र–मण्डली के लगभग चवालीस व्यक्तियों का उसने उल्लेख किया है। उनमें विद्वान, कलाकार, कवि, नर्तक, संगीतज्ञ, सन्त, आयुर्वेदज्ञ, सिद्ध, धूर्त और परिचारक आदि अनेक भाँति के लोग थे। देश–देशान्तरों का भ्रमणकर अनेक वर्षों बाद वह अपने गाँव प्रीतिकूट लौट आया। एक दिन प्रचण्ड गर्मी की ऋतु में जब वह घर पर आराम कर रहा था, तो एकाएक महाराजाधिराज हर्ष के भाई कृष्ण का सन्देश लेकर मेखलक उसके पास आया। उसने बाण को एक पत्र (लेखमालिका) दिया और प्रणाम करने के बाद पास ही में बैठ गया। बाण ने पत्र को पढ़ा। उसमें लिखा था–'आपको अन्य बातों का पता मेखलक की जबानी विदित होगा। आप बुद्धिमान् व्यक्ति हैं और अब अधिक विलम्ब न करेंगे, जिससे काम बिगड़ता हो।' तदन्तर मेखलक ने कृष्ण का मौखिक सन्देश इस प्रकार निवेदित किया– बिना कारण ही मैं तुम्हें अपने बन्धु की भाँति प्रेम करने लगा हूँ। तुम्हारी अनुपस्थिति में दुर्जन लोगों ने सम्राट् से तुम्हारे सम्बन्ध में कुछ उल्टी–सीधी बातें कह डाली हैं। किन्तु मैं जानता हूँ कि वे सही नहीं हैं। मैंने सम्राट् से तुम्हारे सम्बन्ध की सभी बातें विस्तार से बता दी हैं। उन्होंने मेरी बातें मान ली हैं। इसलिए अब अधिक समय गँवाये शीघ्र यहाँ चले आओ। मुझे तुम्हारा इस प्रकार घर पर निष्क्रिय पड़ा रहना अच्छा नहीं लग रहा है। तुम्हें सम्राट् के समक्ष आने में भयभीत नहीं होना चाहिए और न राज–सेवा को झंझटिया काम समझकर हाथ–पर–हाथ रखे उदासीन बैठे रहना चाहिए। रात में बड़ी देर तक उसे नींद नहीं आयी। अपने हितेच्छु मित्र के प्रति मन–ही–मन वह कृतज्ञता का अनुभव करता रहा, किन्तु राज–सेवा के कष्टप्रद अनुशासन से भी सशंकित होता रहा। फिर भी किसी प्रकार उसने–अपने को तैयार कर लिया। दूसरे दिन बाण, मेखलक के साथ राज दरबार के लिए चल दिया। एक दिन बाद वह मणितारा गाँव में अवस्थित सम्राट् की छावनी में पहुँच गया। उसको सम्राट के पास ले जाया गया। बाण को देखते ही हर्ष ने उपेक्षा भाव से कहा– मैं तब तक इसे देखना पसन्द नहीं कर लेता। जब तक यह मेरी प्रसन्नता को प्राप्त नहीं कर लेता।

पुस्तक चर्चा/मिथिलेश यादव

एक पुरातत्वविद् की आत्मकथा

पुस्तक 'मैं हूँ भारतीय' एक पुरातत्वविद् के.के. मुहम्मद की आत्मकथा है, जिन्हें अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में पढ़ने और भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण में कार्य करने का अवसर मिला। यह पुस्तक एक प्रेरणादायी सामग्री के रूप में सामने आती है, जिसमें यह वर्णन है कि किस प्रकार उन्होंने मार्क्सवादी इतिहासकारों की संगठित ताकत का मुकाबला उनके ही गढ़ में किया, कैसे एक अकेले व्यक्ति ने साम्राज्य से भिड़ंत की। भारतीय पुरातत्व विभाग किस प्रकार अपने आपको प्रस्तुत करे, इस संबंध में उनके सुझाव सामान्य जन में नई सोच पैदा करते हैं और भविष्य में इस विभाग की योजना बनाने वालों को दिशा–निर्देश देते हैं। वे इस बात पर बल देते हैं कि इस विभाग की अपार संभावनाओं को एक के बाद एक आनेवाली सरकारों ने भयंकर रूप से अनदेखा किया है। किसी सक्रिय पुरातत्वविद् की पहली प्रकाशित डायरी होने के कारण यह इस विषय की बारीकियों पर रोचक अंतर्दृष्टि देती है और स्पष्ट रूप से बताती है कि एक पुरातत्वविद् को किस प्रकार धार्मिक तथा क्षेत्रीय पक्षपातों से ऊपर उठना चाहिए। भारतीयता और राष्ट्रवाद का बोध जागृत करने वाली पठनीय कृति है। जाने–माने पुरातत्व वैज्ञानिक के.के. मुहम्मद पुरातत्व के क्षेत्र में धैर्य, ईमानदार, साहस, तत्परता आदि गुणों के लिए जाने जाते रहे हैं। पुरातत्व सर्वेक्षण के क्षेत्रीय निदेशक (उत्तर) के रूप में सेवानिवृत्त हुए के. के. मुहम्मद साहसिक संरक्षण कार्यों के लिए विख्यात रहे हैं, जिन्होंने कई बार जोखिम का सामना किया और नक्सलियों तथा डकैतों के कैंप में घुसने का खतरा तक उठाया। स्मारकों से जुड़े विषयों पर उन्होंने राजनीतिक दबाव तथा सभी प्रकार के राजनीतिक और धार्मिक नेताओं के सामने झुकने से इनकार कर दिया। उन्होंने पहली नियुक्ति जो 1988 में चेन्नई हुई थी। उस समय उन्होंने चेन्नई के महाबलीपुरम में समुद्र तट के मंदिर के पास बुद्धि में रहे मंदिर की खोज तथा केरल के त्रिचूर में महाशिला संस्कृति के अंशों की खोज का कार्य किया था। केरल के कालीकट जिले के एक सुदूर गाँव में मुस्लिम परिवार में जन्मे और जिंदगी में बड़ी सफलता हासिल करने के लिए कड़ी मेहनत करने वाले के.के. मुहम्मद ने अपने कार्य क्षेत्र में विपरीत परिस्थितियों का सामना करके योग्यताओं को बड़ी योग्यताओं में परिवर्तित करने की क्षमता प्राप्त की। प्राथमिक कक्षा के अपने अध्यापकों और गाँव के पुस्तकालयों का आभार जताते हुए के.के. मोहम्मद अपनी आत्मकथा प्रारंभ करते हैं। उनके जीवन विजय का वही आधार है। बुद्धि से लोग कई उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकते हैं। बुद्धि के साथ धैर्य, ईमानदारी, साहसिकता,

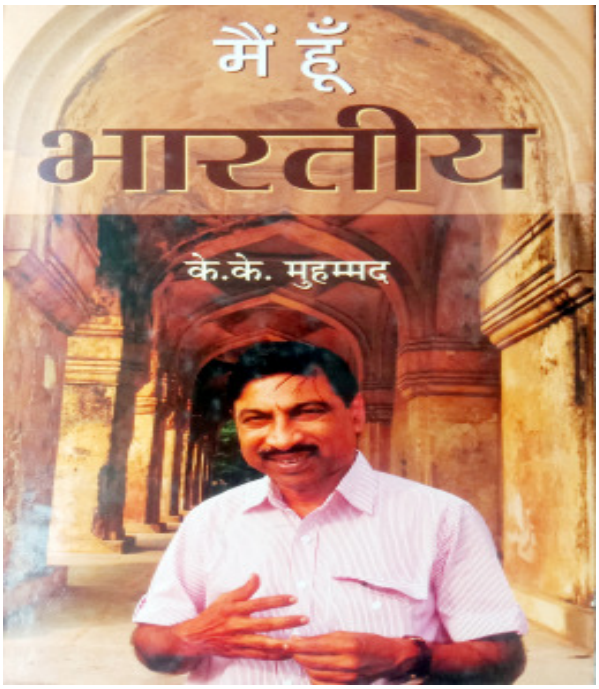

जनसेवा की भावना आदि चारित्रिक गुणों होने से यथार्थ जीवन में विजय और प्रगति संभव हो जाती है। आज भारत में यह बात दुर्लभ हो गई है। यहाँ के.के. मुहम्मद दूसरों से भिन्न दिखते हैं। अपने संस्मरण में सरल ढंग से वर्णित घटनाओं की परंपरा से पुरातत्व विज्ञान के क्षेत्र की महत्वपूर्ण विजय का परचम लहराया। वे विभिन्न धार्मिक व राजनीतिक विश्वासों को मानते हैं। उसमें उनकी ईमानदारी है, अन्यथा वे लोग उनको कुचलते थे। निष्कपट व्यापक दृष्टिकोण ने उन्हें बचाया। समायोजित विचार और जागरूकता के कारण ताज कॉरीडोर मामले में तत्कालीन मुख्यमंत्री का के.के. मुहम्मद विरोध कर सके और आगे बढ़ सके। हिंदू, मुसलमान और साम्यवादी आतंकवादियों से एक साथ लड़कर वे आगे बढ़े। विभिन्न धार्मिक विश्वासियों के तीर्थस्थलों के पुनर्निर्माण के लिए प्राप्त अवसरों को के.के. मुहम्मद अपने जीवन का सौभाग्य एवं पुण्य मानते हैं। इसमें सबसे प्रमुख मध्य प्रदेश के चंबल में डाकुओं के अधीन रहे वटेश्वर मंदिर का पुनर्निर्माण है। समाज में किनारे कर दिए गए डाकू लोग। दुश्मनी, बदला, हत्या आदि के साथ जीवन बितानेवाले इन लोगों के तकरीबन दो सौ मंदिर भूकंप में नष्ट हो गए और पत्थरों के ढेर बन गए थे। किसी ने इस विषय में कुछ नहीं किया। मुहम्मद ने मध्यस्थों के माध्यम से उन डाकुओं से बात की।

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के लिए 1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक : श्रीराम तिवारी, समन्वयक : राजेश्वर त्रिवेदी.

आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन: 0734-2521499, 0755-2660407 Email:mvspujjain@gmail.com, vikramadityashodhpeeth@gmail.com